अग्निशेखर

कालवृक्ष की छाया में

अग्निशेखर की कविताओं में हमारे जीवन से गायब होती जा रही मानवीय संवेदना के प्रति एक प्रश्नाकुल छटपटाहट है। अपने समय को संदेह और शंका से देखने के साथ ही ये कविताएँ उसमें मुक्तिकामी उदात्त चेतना के साथ हस्तक्षेप करती हैं। संवेदन के गहन और अछूते स्तर पर ले जाकर ये पूरे हौसले, विवेक और मर्मवेदना के साथ मानवजीवन की प्रतिगामी शक्तियों को चुनौती देती हैं। धार्मिक आतंक और निर्वासन की त्रासदी, 'जीनोसाइड' और 'डायस्पोरा' जैसा स्वदेशी वस्तु-सत्य समकालीन हिंदी कविता में मुख्यतः अग्निशेखर से घटित हुआ है। इस अनदेखे और अनकहे सच की जटिलता को उन्होंने पहले भी तरह-तरह से पकड़ने की कोशिश की है। लेकिन इधर की उनकी कविता में एक बड़ी फाँक है। निर्वासन के इतर उनकी ज़्यादातर कविताएँ वैश्विक चिंता को केंद्र में रखते हुए समकालीन कविता के लक्ष्य और विचार को विस्तार देती हैं। संघर्ष की कौंध और प्रेम की सादगी से आप्लावित अग्निशेखर की कविताएँ उदग्र जिजीविषा से भरी हैं।

गुरुवर डॉ. भूषण लाल कौल को
निष्ठा, स्नेह और सम्मान के साथ.

[illegible]
18/12/02

कालवृक्ष की छाया में

अग्निशेखर

सारांश प्रकाशन
दिल्ली-हैदराबाद

सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड

प्रधान कार्यालय : 142-ई, पॉकेट-4, मयूर विहार-1, दिल्ली-110091

फोन : + 91-11-2713253

शाखा : 17, अमृता माल (पहली मंजिल), 6-3-1110, बेगमपेट, हैदराबाद-500016

फोन : + 91-40-6516611

प्रथम संस्करण : 2002

मूल्य : रु. 125.00

KAALVRIKSHA KIE CHHAAYA MEIN
Poems by Agnishekhar

आवरणचित्र : वीर मुंशी

लेजर कम्पोजिंग : क्वालिटी प्रिंटर्स, दिल्ली-110093

[illegible] ऑफसेट, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित

माँ के लिए
जिसे गहरी आस्था है
जीवन, साहस, सौहार्द्र और सपनों में
सकारात्मक रूप से
अत्यंत नेकदिल इनसान और सुंदर
जो कभी टूटी नहीं किसी भी विपदा में

अपने समय को समझने का साहस

अग्निशेखर की यह लंबी कविता का, जिसे एक कविता-शृंखला भी कह सकते हैं, केंद्र सतीसर का मिथक है। यह मिथक नीलमत पुराण का एक आख्यान है। सतीसर के दुर्भाग्य का यह मिथक कई बार तो ऐसा लगता है जैसे वर्तमान स्थिति का ही कोई रूपक हो। कश्मीर के स्मृतिकोष से निकले इस मिथक के आंतरिक अंतरालों को अग्निशेखर समकालीन संदर्भों से भरते हैं। आतंक, विस्थापन और शक्ति-संरचनाओं के मनुष्यविरोधी कुचक्र और क्रूरताओं के ब्यौरे और संकेत, सब मिलकर एक प्राचीन मिथक को हमारे समय के मिथक में रूपायित कर देते हैं। शक्ति-संरचनाओं के विरुद्ध अवज्ञा का साहस जब छीजने लगता है और प्रतिरोध की शक्तियाँ अशक्त और विभ्रम की स्थितियों में होती हैं तो रचना अपने समय के सच को मिथकों के जरिए ढूँढ़ने और रचने की कोशिश करती है।

मिथक शायद एक ऐसा व्यतीत है जो मन-मस्तिष्क के किसी कोने में किसी-न-किसी रूप में अव्यतीत बना रहता है और हर अँधेरे समय में हमें बुलाता है, अपने समय को समझने का सहारा, साहस और समझ देता है। कुछ हद तक इसी अर्थ में मिलान कुंदेरा ने विस्मृति के विरुद्ध स्मृति के संघर्ष को शक्ति के विरुद्ध मनुष्य के संघर्ष के रूप में देखा होगा। मिथक जातीय के साथ ही स्थानीय होता है। अक्सर सतीसर के मिथक में भी कश्मीर की भौगोलिक स्मृतियाँ गुँथी-बुनी हैं।

नागों के जीवन की विडंबनाओं और विद्रोहों से जुड़े सतीसर के इस मिथक को प्रसाद के नाटक *जनमेजय का नागयज्ञ* के साथ रखकर देखें तो नागों के संदर्भ लगभग एक-दूसरे से विपरीतमत सामने आते हैं। सतीसर के मिथक में कश्यप ऋषि जलोद्भव के आतंक से नागों की रक्षा के लिए देवताओं का आह्वान करते हैं लेकिन जनमेजय के नागयज्ञ में काश्यपों का बहिष्कार किया जाता है क्योंकि परीक्षित के वध में कश्यप की भूमिका संदेह के घेरे में है। दोनों आख्यानों को आमने-सामने रखें तो वर्चस्व के द्वंद्व और मिथकों की व्याख्याओं की राजनीति के अनेक पहलू उजागर होंगे। इधर इस बात को भी लक्ष्य किया जाना चाहिए कि इस रचना में प्रचलित और बहुसंख्य द्वारा सर्वस्वीकृत मिथकों से हटकर जनजातीय और कुछ अप्रचलित मिथकों का प्रवेश हुआ है।

मिथक अनुरैखिक नहीं होता, वह एक बहु-संस्तरीय, बहु-केन्द्रित और बहुरूपी

संरचना है। इसलिए एक ऐसे कठिन समय में जब यथार्थ स्थितियाँ बहुत जटिल और उलझी हुई होती हैं तब रचना अभिव्यक्ति के लिए मिथकों की ओर देखती है या मिथक गढ़ने का काम करती है। विगत दो दशकों में कश्मीर में आतंक और निर्वासन ने एक ऐसी स्थिति को निर्मित किया है जिसमें 'विश्वास और संदेह' समरूप हो गए हैं।

आतंक और निर्वासन शायद हमारे समय के दो सबसे बड़े संकट हैं। निर्वासन को लेकर अग्निशेखर ने पहले भी कई ऐसी कविताएँ लिखी हैं जो विचलित करती हैं। लेकिन आतंक और निर्वासन जैसे पद इस समस्या को पूरी तरह समझने के लिए शायद अपर्याप्त है। इस सच की पूरी जटिलता को एक साथ समटने की कूवत शायद एक मिथक के जरिए ही संभव है। अग्निशेखर ने मिथक और यथार्थ के बीच आवाजाही के लिए एक मजबूत पुल बना लिया है। ''सतीसर है/स्मृति पूर्वजन्म की मानो/इसी जन्म में।'' अग्निशेखर आतंक और शक्ति की तमाम मनुष्यविरोधी संरचनाओं के विरुद्ध अवज्ञा और प्रतिरोध के लिए स्मृति को एक उपकरण की तरह भी इस्तेमाल करते हैं। मिथक के स्तर पर, भाषा या शिल्प के साथ अग्निशेखर का व्यवहार क्लासिकीय होने के बजाय लिरिकल अधिक है। वहाँ मिथक का वैभव रचने के बजाय आतंक और निर्वासन की त्रासदी भुगतते लोगों की पीड़ा व्यक्त करने पर अधिक जोर है।

इस कविता को उसके शब्दों से ज्यादा उसके संकेतों और स्पेसेज में पढ़ा जाना चाहिए, शायद तभी हम उस हँसी को पहचान पाएँगे जो वस्तुतः ''हमारे रोने की नई विधा है।''

हिंदी में निर्वासन को लेकर लिखी कविताओं में एक किस्म का दुःख तो दिखता था, एक नास्टेल्जिया भी, लेकिन एक गहरी टीस कम ही महसूस होती थी, क्योंकि अभी तक निर्वासन वस्तुतः आर्थिक बाध्यताओं, नौकरी आदि से ही जुड़ा रहा है। कश्मीर के संदर्भ में निर्वासन के पीछे आतंकवाद की गहरी काली छाया है।

हमारे समय में जबकि चीज़ों को सरलीकृत ढंग से टालने की कोशिशें हो रही हैं, मुझे कई बार लगता है कि राजनीति से भी ज्यादा उदासीन चेहरा हमारे साहित्य का है। सबकुछ से बेखबर घोर व्यक्तिकेंद्रित, आत्मरति करता हुआ...ऐसे में जबकि एक तरफ राजनीति के सभी चेहरों का अविश्वसनीय हो जाना सबसे भयानक स्थिति है, अग्निशेखर की यह रचना जीवन और उसकी गरिमा में एक आशा जगाती है।

178, आराधनानगर
भोपाल-462003

—राजेश जोशी

क्रम

सतीसर

एक

काल है वृक्ष
स्वप्न और स्मृति के क्षितिज पर
अक्षय...
अंकुरित हैं शब्द,
कथाएँ युगान्तरों की...
कालवृक्ष की छाया में
वास करतीं
जिज्ञासाएँ...
इस बार सुनते हैं कवि से
व्यथा सतीसर की...

दो

आकाश-मार्ग से देखा देवताओं ने
हिम-मंडित पर्वतों के बीच
एक नव-यौवना झील को
जो समुद्र से कम नहीं थी विशालतर
लहराती हुई
और नील-वसना...

ठगे रह गए देवता
फूलों में सोई शताब्दियाँ झूम रही थीं
जन जीवन भी था
सहज, सरल...

देवताओं ने किया इतिहास में हेर-फेर
कि उनके पूर्वजों ने किया है
इस महा सरोवर का निर्माण
यहाँ देवों की कांति से
उत्पन्न हुई है धूप
मुस्कान से फैली है हिम राशि
ऋचाओं से बने हैं पक्षी
और बने हैं
देवताओं की अठखेलियों से मौसम

विस्मित नेत्रों से देखा नागों ने
सतीदेश में
पर्वत लाँघ कर उतर रहे हैं देवता...
समय के राजदूत!

तीन

इस बार शची को लेकर
प्रकट हुए सतीसर में इंद्र

डोल गया
सतीसर का जल
उत्तेजित हुआ अतीत...

Discuss

देवराज हैं नागों के हंता
असुरों की पराजय का उल्लास...
वह करेंगे हमारी स्त्रियों का अपहरण
करेंगे छल हमारे साथ
गरुड़ों के पक्षधर हैं इंद्र

कहा एक वयोवृद्ध नाग ने
हवा में हाथ उठाकर
बंधुओ, याद करो
विष्णु के साथ हुई
हमारे वासुकिनाग की संधि
कि अहियों का कोई भी शत्रु नहीं आएगा
हमारे देश में

चुप क्यों हैं नीलनाग
विष्णु के स्नेहपात्र
हमारे संरक्षक

कह दो इंद्र से
कह दो गरुड़ से भी
भेज दो संदेश विष्णु को भी
जीने दो नागों को सतीदेश में
अपना जीवन

Discuss

चार

उड़ गया इंद्र का विमान
मेघों को चीर
हुआ ओझल

सतीसर में तैर रहे हैं
नागों और दैत्यों के शव

अवाक् हैं पर्वत
पराजय की धुंध में डूबे

देवताओं की गद्‌गद दृष्टि में
चमकती है महिमा इंद्र की

घायल हैं नाग
गरुड़ की चंद्रहास हँसी से

'दैत्यराज संग्रह की क्या थी बिसात
कि इंद्र से लोहा लेता'
कहा एक देवता ने
अपने मित्र से

'परंतु उसका भी अद्भुत था
रण कौशल'
'हाँ, वीर्यवान था दैत्यराज
गिरा अमाप वीर्य उसका
शची को देख
सतीसर में'

और हुआ उत्पन्न
लहरों के बीच जलोद्भव

उसकी किलकारियों से
व्यथित हुईं नागिनें
नील की पत्नियाँ
जो विह्वल थीं
इंद्र के हाथों हताहत
अपने पुत्रों को देखकर

व्याप्त है शोक सतीसर में
समय की आँखों से
टपकता है मौन
पेड़ों की पत्तियों पर

विषाद में डूबा नील
डालता है नज़र
शिशु जलोद्भव पर
जो पानी के झूले पर
झूल रहा है

उठाया गोदी में उसे नील ने
चूमे नन्हे हाथ
तलुवे चूमे

पहनाई अपनी मुस्कान
उसे लगाया सर माथ

भीग गए स्तनाग्र दूध से
नागिनों के...

पाँच

किया गरुड़ ने
इंद्र का अभिनंदन
पुष्पों से अर्चन

असभ्य हैं नाग शिश्नोपासक
अयाज्ञिक हैं
अनार्य हैं

अधिकारों की करते हैं बात
असुर-उपासक
दया के पात्र हैं नाग

भूल गए
अतीत में प्राणों की भिक्षा

नागों को सिर चढ़ा रखा है
शिव ने
कह दो रुद्र से
सँभाले शिव को

भूल गए हैं नाग पराजय अपनी

भूल गए हैं शेषनाग को
दास बनाया केशव ने कैसे

प्रसन्न हुए इंद्र
गरुड़ के कान में पास बुलाकर बोले,
'दैत्यराज संग्रह के सुत जलोद्भव को
विमुख करो युक्ति से
नागों के
खींच लो दोनों के बीच लकीर'

सम्मानित हुए गरुड़
भीगा सोमरस से इंद्रलोक
अपहृत नागकन्याओं की
बज उठीं पायलें

छह

अट्टहास जलोद्भव का...
कि हिल उठी धरती
ध्वस्त हुए
नागों के नगर

घूमती है जलोद्भव की
कोप-दृष्टि
सहम जाती हैं वनस्पतियाँ
सतीसर के पानियों पर
तैरती पर्वत-छाया में
छिप जाती हैं
अपने ही भीतर
कौंध जाती हैं बिजलियाँ
जलोद्भव की तनी भृकुटि से
उसकी गति में है
गरुड़ की गति
इंद्र का वज्र
है उसका संकल्प

LHP.

LHP.

जलोद्भव है
नरभक्षी चिंता
सतीदेश में

काँपती हैं
उसके नाम से नागिनें

अमर है जलोद्भव
मार नहीं सकता उसे कोई
सतीसर के जल में
निर्भय है
भीतर बाहर...
चिंतित हैं विष्णु
अपराध है ब्रह्मा का वरदान
उनके देव-गणित से

सात

अपनी छायाओं से भी
डरने लगे हैं नाग

बिछा है सब ओर
गुप्तचरों का जाल

किस एक पर करें
इन दिनों विश्वास

LMP.

नक्षत्रों की दया
और
माताओं की प्रार्थनाओं से
कटते हैं दिन

मौन हैं शब्द
आँखों में छिपी हैं बातें

LMP

गरुड़ के पंजों में अपहृत
चूज़े-सी नींद
नागों की

'कहाँ हैं नीलनाग?'
पूछती हैं उनकी आँखें
एक दूसरे से...

आठ

पंक्तियों में
उदास खड़े हैं बच्चे

स्त्रियाँ
गोया काठ की हों
निःस्तब्ध सी
कंटीली झाड़ी पर
धूप में सूख रही
उनकी आत्मा

कुछ लज्जा
कुछ अहम् उनका

विवश हैं पुरुष उनके
आँसू की तरह हुए अकेले
गुमसुम

और
जलोद्भव...
गद्गद है उसकी ख्याति

उसके चलने से
चलता है चन्द्रमा भी आकाश में...
ब्रह्मांड में नक्षत्र भी
अधीन हैं उसके

वह स्रष्टा है
है पालनहार भी
वही है संहार की महाशक्ति

उत्साहित हैं दैत्य
नहीं रहा सतीसर अब
नागों का देश

नौ

जलाए नागों के ग्रंथ
जलोद्भव ने
फेंकी झील में पांडुलिपियाँ
धुल गया इतिहास से
पन्ना-पन्ना
खुश हुए इंद्र
मुस्कुराए विष्णु

LMP.

Discuss

Discuss

देखा गरुड़ ने
धूल में पड़े हैं
पूजास्थलों के कलष
जैसे हों कवियों के शीष...
गाड़ दिए जीवित ही जहाँ-तहाँ
भूमि में कुछ लोग
भाग गए कुछ वनों में
वेश बदलकर
कुछ ने दिए प्राण
पर स्वीकार नहीं की
जलोद्भव की संप्रभुता
लंबा है कद जलोद्भव का
बनवाई नागों ने

खिड़की-दरवाजों की चौखटें
नीची
कुछ नाग हैं लगे बोलने
सत्ता की भाषा
झुठलाते संत्रास
अपने परिजनों का

हवा में घुला अपमान
पहुँचता है
फेफड़ों के भीतर
सतीदेश में...

LMR

दस

रसातल में जा छिपा सूर्य
उतरा हर किसी की शिराओं में
घुप्प अँधेरा

भयावह लगते हैं
झींगुरों के स्वर

सतीसर के जल से बाहर
सिर निकालकर देखता है चारों तरफ़
जलोद्भव...

धू-धू जलते हैं
नागों के बचे हुए नगर और ग्राम
आकाश में साड़ियों की तरह लहराकर
तैरती हैं लपटें

'प्राणों की रक्षा!
यही है धर्म विकराल समय में
कहा नील ने
और किया देश से पलायन
नागों के साथ

Imp.

Imp.

V. V. Imp.

'सदैव नहीं होता
पराजय को शिरोधार्य करना
पलायन'
नागों की आँखों में गहराई वेदना

कुछ नाग थे अँधेरे में
दौड़ रहे खेतों-खेतों पैदल
हाँफ रहे थे कुछ
कुछ रोके थे खाँसी
बालक थे गोदी में सोए
बदहवास माँओं की

नवजात किलकारियाँ थीं
मृत्यु को निमंत्रण
लाँघ गए अँधेरे में पर्वत
खाई, जंगल, नदियाँ कर डालीं पार
सुध-बुध खोकर

कुछ टूट गए वृक्षों की भाँति
भस्म हुए कुछ
क्षुधा की अग्नि में
कुछ धँस गए क्लांत समूह हजारों
हिमराशि के नीचे

'समय क्रूर है
संबल है धैर्य
विवेक है पथ
पर दुर्गम है
चरैवेति...
चरैवेति!'
कहा नीलनाग ने

अकाल मृत्यु के मुँह में जाते
नागों से

'जो मरा
वही मुक्त हुआ पीड़ा से
यह अन्याय है कल्पनातीत
जो हुआ हमारे साथ'

ग्यारह

जैसे वृषभ के सीगों पर है धरती...
नीलनाग के शीष पर
चिंता का बोझ
आँखों में अवसाद
झुकी रीढ़
फुफकारते रोएँ-रोएँ
निष्कासन का विष
फिर विलीन होता अँधेरे में
अस्तित्व

दोनों छोरों को छूते हुए
एक साथ
वह बीच की जगह में
झूलता है संवेदन-शून्य हवा में

आकाश से बरस रहा है
धूप का तेज़ाब
और मौन है पसरा हुआ
चारों तरफ
किससे कहें देव-भूमि में यहाँ
रोयें कहाँ जाकर
यह दुखड़ा

देव तो प्रजा है इंद्र की
वरद् हस्त है विष्णु का
उनके ऊपर
जो दिखते हैं निर्दोष
वे ही दोषी हैं
और यह हँसी हमारे रोने की
नई विधा है...
सहसा अधरों पर नील के
आया एक नाम
खुलीं धीरे से पलकें
जैसे घने बादलों के बीच से
गिर आई हो
धूपीली आभा
साकार हुए मस्तिष्क में
कश्यप ऋषि...

V.V. IMP.

V. IMP

बारह

मंत्रों की तरह
वेदनाएँ अधरों पर
जाते हैं जिस-तिसके पास
नागों के दल
जल रहित मेघों से
यहाँ मनीषी
कुछ सच में अनभिज्ञ...
कुछ भीरु...
बड़बोले कुछ...
यह त्रासद चेहरा
नील की आँखों में
उभर रहा

नाग हैं बेबस
समय के हाशियों पर
निर्वासन उनका
सूरज के चेहरे पर
चेचक के दाग
इतने हैं घाव...

'सतीसर है
जड़ों की भूमि हमारी
रक्त में प्रवाहित...'
समझाते हैं
नागों को नील—
'कैसे जी सकेंगे
विना उसके हम यहाँ
धूप में निठुर?

'हमें जाना है
कश्यप ऋषि के पास'
नील के भीतर
अंकित हो रही है
अरदास...

तेरह

'क्यों लौटें
फिर से हम सतीदेश को
निकल आए हैं
मृत्यु-उपत्यका से
यही क्या कम है
उपलब्धि!'

V. IMP

खिन्न हैं नील से
कुछ पराजित मन
नागों के दल...

'क्षण-क्षण बदलती
सृष्टि में
सुरक्षित रखें हम
परंपराएँ अपनी...
यह उन्माद है।'
कहा कुछ नागों ने
श्रेयस्कर है त्याग
मिट्टी के मोह का
'सतीसर है
स्मृति पूर्व जन्म की मानो
इसी जन्म में!'
कहा उन्होंने

IMP

चिंतित हैं नील
ह्रास पर नागों के
पर प्रेरित करती हैं
पग-पग पर उसे
नई चुनौतियाँ
वह लोक-संग्रह करते जाएँगे
नागों का
बचाएँगे स्वप्नों को
अंतिम क्षण तक

चौदह

ओ मातृभाषा!
दया करो हमारे नवजात बच्चों पर
कहाँ जाएँगे हम तुम्हारे बिना
इन गूँगे अँधेरों में
गहमागहमी-भरे शहरों में
घुल जाते हुए भीड़ में
याद करते हुए अपने गाँव
पूछेंगे खुद से कौन हैं यहाँ हम
क्या है हमारा पता
फिर रोएँगे
सूखे आँसू हम
कुछ देर...

पन्द्रह

कहा नील से कश्यप ने,
पिघल जाएगी बर्फ
जो जमी हुई है
जलोद्भव के रूप में
तुम सिर्फ़ बचाकर रखो
अपनी धूप...
करो अपने ज़ख्मों को याद
बना लो उनसे हथियार
चिंतित है इस दैत्य से
अब देवों का संसार

हो रही हैं भाषाएँ भी दूषित
धर्मों में
जाति-जाति में जलोद्भव
घूम रहा है नंगे पाँव....

यह मेघ नहीं रहेंगे छाए
आकाश में

मैं चलता हूँ
साथ तुम्हारे विष्णु के पास...

सोलह

भीग गए अनंत के नेत्र
डूब गया अपने ही भीतर तमस में
जैसे समुद्र तल तक...

नील की दशा में
देखा अनंत ने एक जिंदा संस्कृति का
समाधि-लेख

नम आँखों से
ढुलक गई आँसू की एक बूँद
मुकुट पर
विष्णु के
हवा के झोंके से फड़फड़ाए
वेदों के पन्ने
पुत्र-शोक से जैसे दहाड़ें मारती हैं माताएँ
हवा में बेहाल लहराए
ब्रह्मा के बाल
नील की झुर्रियों में पड़ी
देखी विष्णु ने
समय की धूल
और
उठ खड़े हुए पक्ष में नागों के

सत्रह

छा गए देवों के वाहन
आकाश में
जैसे पंछियों की डार

नीचे पृथ्वी पर युद्धाक्रांत
चल पड़े वापस
    सतीदेश को नाग
हवा में तैरती हैं
फुफकारें
दिगन्तों तक गूँजते हैं
    उद्घोष
लहरातीं
पताकाएँ पीली
जैसे ठाठें मारती हों
    नागों की
        मनोकामनाएँ
चढ़े ज़ा रहे हैं दुर्गम पर्वत
पीछे छूटते जाते हैं अरण्य
धरा पर
असंख्य हैं पड़ते पद-चिह्न
    देवों के

'कायर हैं वे
जो बस गए पीछे
और नहीं आए हमारे साथ!'

कहा नागों ने
नील से–
'हम लड़ेंगे
अंतिम साँस तक
जलोद्भव से!'

अट्ठारह

हवाएँ
दौड़ी आईं
और लिपट गईं
नील और उसकी प्रजा से।

चूमे सहमी वनस्पतियों ने
उनके घाव...
ऋतुएँ निकलीं अज्ञातवास से बाहर
और बस गईं नील की आँखों में

देखा उसने
सतीसर के विराट जल-संतूर की
करोड़ों तारों पर
तैर गई हो
फिर से जैसे जीवन की राग
दी नील ने मन ही मन सांत्वना सबको
और निमिष में
फैल गईं सेनाएँ
देवताओं ने स्थिर किया खुद को
शिखरों पर
सामरिक महत्त्व के स्थलों पर

उन्नीस

हो गया अदृश्य
अपनी ही माया में जलोद्‌भव
हवा में हवा की तरह
घुल गया उसका होना
ढूँढ़ रही हैं फिलहाल उसे
देव-सेनाएँ
सहम गई फिर से हवा
सतीसर की
पसर गया है मौन...

कहाँ हैं दैत्य? पूछते हैं विष्णु
चकित हैं नील
व्यग्र हैं सेनाएँ

खँगाली जा रही गोपनीयताएँ
वनराजि है छानी जा रही
जीवन के भग्नावशेषों में उगी
खुजली–घास के अँधेरों में भी
नहीं छिपा है जलोद्‌भव...

सहसा सतीसर के भीतर
जलराशि की हजारों तहों के नीचे
जलोद्‌भव के होने को लेकर समाचार
दौड़ आया तक्षक नील के पास...

बीस

'तोड़ दो
पर्वत का बाँध
वराहमूल के पास'
कहा विष्णु ने

'यह जलराशि सतीसर की
अवसाद है तरल रूप
बह जाने दो
इसे बाहर
जीवन से!'

रो पड़े मन ही मन नील
कौंध गई बिजली
उनके भीतर...
नहीं, यह जल है हमारा नाम
इसे क्यों मिटाएँ हम
यह ब्रह्मांड में चरम क्षण है
प्रकृति के सृजन का
इसे धकेलें हम निर्वासन में?

और गिर पड़ा
अनन्त के चरणों में
वराहमूल का पर्वत
गड़ गया लज्जा से
पृथ्वी के अंदर...

चल वसी सतीसर की जलराशि
पीछे अभिशाप छोड़....

इक्कीस

विना छत के घर-सी
हो गई उपत्यका
भयभीत हुआ जलोद्भव
आकाश में मेघों को देख
कर डाली सृष्टि
अंधकार की उसने

हो गईं दिशाएँ ओझल
ठगे रह गए देव
घबराईं संभ्रांत पत्नियाँ उनकी

विलीन हो गए
अँधेरे में ब्रह्मा
वेदों के मंत्र श्रीहीन...

प्रकट हुए अंबर में रुद्र
हाथों में सूर्य और चंद्रमा लिये

किया तब जलोद्भव ने
भयंकर अट्टाहास
गिर गए हाथों से देवों के अस्त्र

स्वप्नजीवियों के गर्भ
गिर गए बीच वहस में
सामने नील के
हुई बिडंबना साकार
जलोद्‌भव को
किया विमुख नहीं होता देवताओं ने
क्या मजाल थी
हमारी धरती पर रखते वे अपने पाँव
हमें भी कहाँ जाना पड़ता
शरण में...

छकाया देवताओं को
जलोद्‌भव ने
वर्षों तक
रक्त की छींटों से हो गए
मेघ लहूलुहान...

बाईस

ये कैसे दिन हैं
विश्वास और संदेह
हो गए हैं समरूप
मिट गया
हत्या और करुणा में भेद

गुप्तचर हैं अपनी परछाइयाँ
हिंसा का आत्म-समर्पण
है छद्म
क्षमा - याचनाएँ भी दैत्यों की
रणनीति जलोद्भव की

तिल धरने की जगह नहीं
दैत्यों के भीतर
'यह घास है पापों की
उनके अन्तस्तल में'
कहा विष्णु ने लोगों से

तेईस

फेंका सुदर्शन - चक्र विष्णु ने
और कट गिरा शीष जलोद्भव का
कीचड़ में
सहम गए दैत्यों के समूह
भाग गए पीठ दिखाकर

उसी क्षण
शिवा ने धरा मैना का रूप
उठाए चोंच में शापों के कंकर
दब गया
जिनके नीचे जलोद्भव का वजूद
इतिहास के अतल में

हट गए मेघ
फैला नील का हर्ष आकाश में
झूम उठीं वनस्पतियाँ फिर से
फिर ऋतुओं ने बजाए वाद्यमंत्र
हवाओं ने धरा
नृत्यांगनाओं का रूप...

चौबीस

देखा सपने में
जलोद्भव को गरुड़ ने
प्रश्नाकुल नेत्रों से बेधता

'तुमने किया है विश्वासघात
नागों का साथ दिया
मुझे पाठ पढ़ाया
        विरुद्ध किया उनके'

टूटी गरुड़ की नींद
हुआ निस्तेज
        विष्णु का स्नेहपात्र
झड़ गए कुछ पंख
डोल गया विश्वास स्वयं पर...
क्या प्रश्नों से डरते हैं देवता भी

दैत्य हैं प्रश्न
अछूत है जाति उनकी
मरणोपरांत भी
मरते नहीं हैं प्रश्नासुर

पच्चीस

उदास है चाँद
पर्वत के शिखर पर
एकांत में बहे जा रहे आँसू
        नील के नेत्रों से
ढुलकते खाली सतीसर में
स्वर्ग से सुंदर रही तुम
ओ सतीसर
हम नहीं थे तुम्हारे योग्य
तुम्हें लगाया दाँव पर
बचाया खुद को आपदाओं से
हा! हमारी असमर्थता
खोल दिए
जन्मांतरों से बंद कपाट हमने
और
शिराओं से अपनी
बहने दिया तुम्हें बाहर

छब्बीस

उगा सूर्य नया पूरब में
मचा नागों में हाहाकार...

रातोंरात
कहाँ से निर्मित हुए ये
देवों के भवन...
ये उद्यान...
पताकाएँ...
ये सीमा-रेखाएँ...
और ये नगर-द्वार...

विस्मित हैं नाग
सूखे हैं अधर उनके।

ये देवों का सुरापान...
ये जयघोष उनके...
नाचती हैं अप्सराएँ...
विजय-स्तंभ के पास
खड़े हैं विष्णु
प्रसन्न है मुद्रा उनकी

Discuss

V. Imp

कुछ नाग भी हैं मिले हुए
झूम रहे
अपने ही विनाश पर।

झेलीं यातनाएँ इतनी हमने
कितना संघर्ष किया
पिए निर्वासन के घूँट
हुए सहस्रों जन
काल-कवलित इस बीच

V. Imp

क्या यही थी विष्णु की करुणा...
देवों की संवेदना?

चिंतित हैं नील...

सत्ताईस

कहा कश्यप ने
देवों के एकाधिपति से
जलोद्भव के हंता से
    'हे देव
    सँवारें अब आप
    जलहीन सरोवर की
        इस भूमि को

'यह देश
अभी हुआ है पैदा
आज है
इसके इतिहास का पहला दिन
कल से पहले क्या था यहाँ
    धरती से आकाश तक
        भरा अँधेरे का
            पारावार...

'हे जलोद्भव के हंता।
हे नागों के मुक्तिदाता।
आप बसाएँ
यहाँ मनु के वंशज
    नागों के साथ'

हिल गए नागों के मूल
खुल गईं आँखें उनकी...
'यह नागों का देश है ऋषिवर
क्यों बसाएँगे
 आप यहाँ
बाहर से नागेतर?

चुप हुए कश्यप
विष्णु भी रहे कुछ मौन
चिल्लाए नाग–

'अन्याय है
यह हमारे साथ
 हम पर जलोद्भव का अंत है
तुम्हारा उपकार
कृतज्ञ हैं हम
 मानते आभार

पर हमें नहीं स्वीकार
तुम्हारे मानव'

ऋषि की धमनियों में
चढ़ा क्रोध का ज्वार
और शाप में दिया नागों को
 पिशाचों का सहवास
जिन्हें नागों की अस्थियाँ
आएँगी रास...

नागों पर यह वज्राघात...।
झर जाएँगे हम
पात-पात...

सोचकर जोड़े नीलनाग ने हाथ
'अज्ञानी हैं नाग
भूमि-मोह के वशीभूत
नहीं जानते हैं पहुँचे
युग की धार पर

और आप हैं युगांतरकारी...'

कुछ उतरा ऋषि का ज्वार
फिर से किया निवेदन नील ने,

'हम कैसे रहेंगे
साथ पिशाचों के
क्या जाल में रहते हैं
बाघों के साथ मृग...

दया कीजिए हम पर
यहाँ बसाएँ मानव ही आप'

फैल गई करुणा
विष्णु के चेहरे पर
जैसे फैली हों नीले समंदर पर
हवा की सलवटें

कुछ कम किया
उन्होंने कश्यप का शाप
'पिशाच आएँगे
सिर्फ सुस्ताने हर वर्ष
शीत में तुम्हारे पास
पिशाच आएँगे हर वर्ष

हमारे वैरी पिशाचों से
लड़कर छह मास
निरापद रहेगा सहवास,'

रह गया स्तम्भित
विष्णु के सामने नील...
लाचार...

अट्ठाईस

हे नील!
मैं हूँ ब्रह्मा, वेदों का कवि
जानता हूँ तुम्हारी पीड़ा
फिर भी हूँ मौन
जैसे पाषाण
यह मेरी विडंबना है शब्दातीत

मैं हूँ कवियों का कवि
प्रतिष्ठित सम्पूर्ण जगत् में
हूँ नाभि-कमल पर
आसीन विष्णु की
यही है बंधन मेरा
वर्षों से उतरा नहीं मैं धरती पर
जहाँ जन्मा
फिर घुटनों चला
खेला
कूदा
फिर हुआ अपनों के संग बढ़ा
नहीं रहा
दुर्गम में विश्वास मेरे कवि को
छिन गया मेरा एकांत मुझसे

बचा नहीं सका मैं भी
अपनी कवि होना
लिखीं चतुराई से
मैंने ढेरों कविताएँ

गिनाऊँ मैं भी अपने
कितने अन्याय
'मत्स्य-अवतार' रचा मैंने
'कूर्म-अवतार' रचा
रचा 'वराह-अवतार' भी मैंने ही
ये हुए जगत् में चर्चित
विष्णु के नाम से
क्या 'हंसावतार' नहीं है शिव की रचना
क्या जुड़ा नहीं
'हयग्रीव' भी साथ हरि के

हे नील!
जानता हूँ आगमन पिशाचों का
है तुम्हारी चिंता

पर इस कोहरे में
मैं नहीं देखता फिलहाल
तुम्हारी पीड़ा का अंत...
बचा लो कैसे भी तुम
नागों का वंश

उन्तीस

काल का प्रवाह है अजस्र
विरुद्ध उसके
        बीच सरित में

स्थिर करते हुए पाँव अपने
सोच रहा है नील—
        है हल्की-सी आशा
        घनी है आशंका
दोनों के बीच
यहाँ संभव है कुछ भी
और अनिश्चित है
        सब कुछ
हाँ! यह कैसी
वक्र रेखाएँ आकाश में
बदल जातीं काली सुरंगों में
        लील जाती हुई नागों को
अंध-कूप में गिरतीं
बे-आवाज हमारी शताब्दियाँ

वह उतरा आँख मूँदकर
अपने भीतर तल में

V. Imp.

पूर्वजों की स्मृति के अतल
वितल, तलातल
रसातल, महातल
पाताल तक
टटोलते हुए जड़ें अपनी

'रक्षा करो अपने मूलों की
ये मूल ही बचाएँगे हमें
भविष्य में!'
गूँजा नील का आर्तनाद
रोम-रोम में हर किसी के....

तीस

साँस-साँस है अभिमंत्रित
हृदय में
इच्छाओं की गूँज
पलकों पर
ऋचाएँ सबकी

नागों की यह उतरी है
उपत्यका में
प्रार्थनाओं की ऋतु...

हे महाराजा!
रक्षा करो हमारे जीवन-राग की
हे ज्वाला!
हम हो रहे हैं निस्तेज
बची रहे हे सारिका!
आकाश में हमारी उड़ान
हे कश्मीरा देवी!
हमारी ऋतुएँ झर रही हैं
यौवन में पात-पात
हे बाला!
चढ़ रहा बलि है हमारा भोलापन

हे शारदा!
हो रहे हैं हमारे कवि हृदयहीन
धूल में पड़े हैं
सौन्दर्य-शास्त्र के पन्ने
दया करो माँ,
बजती रहे दिगन्त में
हमारी शततंत्री—वीणा...

इकतीस

जैसे खुल गई हों विद्युत-वेणियाँ
दौड़ी चली आईं
कश्यप के मंत्रों से नदियाँ
अठखेली करती बहनें
कभी रूठतीं
मुड़तीं वापस
छिप जातीं किसी गह्वर में कभी
पुचकारता ऋषि पिता की तरह
कभी झुकाता चरणों में मस्तक
कभी करता
घोर तपस्या
अंगारों पर खड़े होकर
पधारे तीर्थ
नई भूमि में
पर्वतों को लाँघकर उतरीं
परंपराएँ
उतरीं सुनहले पाँवों से
इन्द्रलोक की ऋतुएँ
बिखेरती वनस्पतियों पर
चाँदनी

डोल गया समाधि में
परमशिव का भी मन
यह उपत्यका देख

बत्तीस

'देवों के बीच
कब तक बचे रहेंगे हम?'
पूछा नील ने एकांत में
अपने पिता से

'हे कश्यप ऋषि!
क्या है अंतर
जलोद्भव के आतंक
और देवताओं की सदाशयता में?

'क्या नहीं दे रहे आप भी
आत्म-विध्वंस का साथ?

'ये कैसी सहिष्णुता
समरसता यह कैसी
जिसके मूल में
अनिवार्य है मानकर चलना
विष्णु की इच्छा

फिर चाहे मानें हम
किसी भी इष्ट को

चल पड़ें किसी भी पथ पर हम
या कह डालें
नास्तिक खुद को
या रख लें मौन चिरंतन प्रश्नों पर

'हे ऋषिवर
यह कैसी माया है विष्णु की
कि यहाँ जगह हो सबकी
पर रहें
अपनी-अपनी जगह पर!'

तैंतीस

हो गईं
मेरी आशंकाएँ साकार...
देखा नील ने
चारों ओर—

हमारे आस्था-केंद्रों पर
हुए हैं देवता
पीठासीन

हर मोड़ पर
प्रकट हो रहे हैं महान विष्णु

हाँ! मेरी नियति
और ये वेदनाएँ मेरी...
ओ, मेरी परछाईं-सी असहायता...
देख रहा हूँ
नागों के प्रतीक
हो रहे स्मृति शेष
खो रहीं
परंपराएँ जीवंत

V. V. Imp.

यह कैसी मुक्त हवा
कैद हैं हमारी आकांक्षाएँ
हास्यास्पद हो गया हमारा जीवन

उपहास का पात्र बना मैं
अपनों के बीच
घिरा अफवाहों और आरोपों के
भँवर में

मुझे नहीं स्वीकार्य
पराजय संस्कृति की
माना अजेय हैं देव फिलहाल
हम बचाएँगे
अपने बीज
और विरोध अपना

चौंतीस

सपने में देखा नील ने
लौट गए हैं देवता वापस
        पर्वतों के उस पार
भर गई
देवदारों के घने वनों तक
खाली सतीसर में चाँदनी झिलमिल

तैर रहा तारामंडल
भावातीत
धुल चुकी हैं दुर्भावनाएँ
कविताएँ खेलतीं साथ बच्चों के

दौड़ते-दौड़ते स्वप्न में
हवा में तैरता है नील
        सतीसर के ऊपर
गिरती हैं उसकी आँखों से
रोशनी की बूँदें
पानी पर
        बदलतीं जो गेंदे के फूलों में
अब नहीं पिशाच यहाँ
नहीं हैं देव भी

करुणा के धाम गए विष्णु भी
यहाँ से...

दूसरा दृश्यबंध :

पर्वत शिखरों के ऊपर से
छलकता
दौड़ता है समुद्र
ऊँची-नीची पानी की
पगडंडियों पर
खा रहीं हिचकोले
नील की नौका
इस प्रलय के नील हैं मनु
कुछ गठरियाँ हैं बीजों की
कुछ नागिनें हैं
बच्चों को छाती से चिपकाए
समुद्र और आकाश के बीच
पानी से बाहर निकले
दिख रहे हैं दू ऽऽ र...
कुछ धवल गिरि-शृंग
प्रार्थना करती हैं
नील की आँखें...
बुला रहे हैं उसे
जैसे वे शिखर आशाओं के
अपनी ओर...

तीसरा दृश्यबंध :

झाँकता है बूढ़ा कोई वास्तुशिल्पी-सा
नील के नेत्रों में
स्वप्न है भविष्य का

देता है उसे
दिव्य मुस्कान वह बूढ़ा
देखता है पंचांग में
सपनों के शिलान्यास का मुहूर्त....

चौथा दृश्यबंध :

दर्पण से बाहर
निकलता है नील
स्वयं से करता प्रश्नों की बौछार
'क्या तुम इन स्वप्नों की ओट में
छिपा नहीं रहे
अपने असत्य को...!

'तुम्हारे अंतस्तल में
रिक्त है सरोवर
क्या भर पाओगे सपनों से
सूने जीवन को
ये नाग तुम्हारे हैं
क्या विश्वास के योग्य...
क्या नहीं ये छोड़ रहे हैं
पहचान के केंचुल
जाएँगे तुम्हें छोड़कर
विष्णु के सम्मोहन में...'

V. V. V. IMP.

किया नील ने
स्वयं को फिर से आसीन
दर्पण में
और कहा उससे
'विरोध है मेरा
विष्णु की माया से

यह माया करती है लोगों से छल
हर लेती है उनकी छवि
मलिन करती गौरव को
ठग लेती उनके
भोलेपन को

विष्णु हैं
छोटे-छोटे देशों के काल
रास नहीं आतीं उन्हें
हमारी स्वतंत्रताएँ
मारक है उनकी मुस्कान

मेरे विरोध में
छिपा है
जीवन का स्वप्न

अन्य कविताएँ

चीन की दीवार

यह दीवार कहाँ से शुरू होती है सम्राट
पहाड़ के इस छोर से या तुम्हारे महल के
अन्तःपुर से
यह दीवार कहाँ से शुरू होती है सम्राट
तुम्हारे भीतर के भूगोल में?
यह पहाड़
जो तुम्हें करते हैं बेचैन
उतरते हैं तुम्हारी कच्ची नींद में
अपने वन्य प्राणियों के साथ
आँधियों और दावानल के साथ
यह पहाड़ कहाँ से शुरू होते हैं सम्राट?

यह पहाड़ तो सहज और खामोश दिखते हैं
इन्हें तुमने इतनी लंबी हथकड़ी क्यों
पहनाई है सम्राट?
यह पहाड़ कहाँ तक फैले हैं
तुम्हारी चिंताओं में
इतने क्यों हैं सिपाही तैनात
इस दीवार पर
यहाँ पर तुम्हारी दीवार में
यह कैसी दरार है सम्राट

दबी हुई प्रजा की अवज्ञा है
या अपने सैनिक पति को खोजती
चियांग लू के आँसू की धार है

यह आँसू
तुम्हारी दीवार से शक्तिशाली कैसे हैं सम्राट
इसे कौन-सी हथकड़ी पहनाओगे तुम
खड़ी करोगे कौन-सी दीवार

यह दीवार कहाँ से शुरू होती है सम्राट?

2001
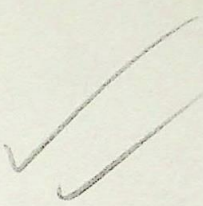
संग्रहालय में कटे हुए पाँव

जाने किसने
घबराकर किसी बड़े प्रश्न का
गला घोंटा है
और ये इतिहास की चिता से बाहर
        रह गए पाँव
बोलते नहीं झूठ
गवाहों की तरह

जाने कहाँ से चलकर
पहुँचे हैं ये कटे हुए पाँव
        हमारे समय में
और यहाँ से
चुपचाप निकल पड़ते हैं
भविष्य की यात्रा पर
जाने किस उम्मीद में
सीने के भीतर
रक्त में स्वप्न छिपाए
निकल पड़ा यह आदमी
        दिगंत में
थककर टूट जाने की नियति में
मौन हो जाने के लिए

एक दिन
तब तक गिरवी हैं
दुख के पास
उसके ये पाँव

1982-98

मच्छेरा : कुछ कविताएँ

1

मछेरा ढीली छोड़ता है डोर
बेपरवाह हो जाती है मछली

क्या काल भी है मछेरा?

2

मछेरा नहीं देखता
पानी के भीतर जो देखता है जाल
कहती है कहावत
पर कहावत से बाहर है
रस्सियों की सदाशयता
जिनसे बुनता है जाल
चालाक मछेरा

काल-पाश हैं हम

3

सपने में हेमिंग्वे से पूछा
उसके बूढ़े मछेरे ने
तुमने क्यों की आत्महत्या

Discuss

वो मेरा था अधिकार
खाली दिनों में
यह लो
अपना 'नोबेल पुरस्कार' वापस

4

जाल फेंकना सीखा मछेरे ने
मछली ने सीख लिया उछलना
कहावत यह भी
मछली की खुशफहमी देखो
तराजू में भी
भूली नहीं उछलना

1996

नींद और सपना
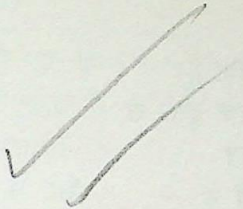
नींद एक नदी की तरह थी
चाँद की तरह था सपना
उस पर तैरता हुआ
दोनों अज्ञात समयों से
जानते थे एक दूसरे को
दोनों को जानते थे हम भी
आँख मूँदकर
दोनों पता नहीं कहाँ से चलकर
आते थे हमारे पास
और हम जागकर
नई-नई परिभाषाओं को
होते उपलब्ध

कभी जब नदी
वैधव्य-सी बीतती हुई
हमारे भीतर बह निकलती
हम समझते थे
बादलों की ईर्ष्या
तब हम भी आविष्ट होकर
एक दूसरे को सारे नियंत्रण नहीं
खोने देते

भयभीत हो जाते हम
अपने ऊपर मँडराते अदृश्य
 बादलों के एहसास से
सपना कई बार
पागलों की तरह नींद को
दिन-भर ढूँढ़ता रहता
 हमारी गलियों में

हम कुछ देर
कोसते बादल बनानेवाले
ईश्वर को
फिर मन-ही-मन
उसके कोप से डरकर
 क्षमा-याचना करते
बादलों ने हमें भी
कितनी देर ढककर रखा था
एक दूसरे से
उन दिनों हमारी स्मृतियों में भी सपना
समय की एक बूँद जितना
क्षणिक था
अँधेरी और उदास नदी में...

1999
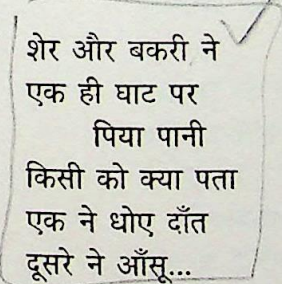
बाईस छोटी-छोटी कविताएँ

प्रतीक्षा

सुई की आँख में
जैसे धागे की प्रार्थना
मेरे अँधेरों में
तुम्हारी प्रतीक्षा...

सद्भाव

शेर और बकरी ने
एक ही घाट पर
पिया पानी
किसी को क्या पता
एक ने धोए दाँत
दूसरे ने आँसू...

मुर्दे-1

'यह जीवन क्या होता है?'
वहाँ पूछा मुर्दों ने एक दूसरे से
एक ने कहा : ताबूत
'सन्नाटा' कहा दूसरे ने
हँस पड़ा जोर से तीसरा
इस बेतुकेपन पर
वहाँ मुर्दों में बनी आम सहमति
खामोश रहने पर

मुर्दे-2

मुर्दे नहीं डरते मृत्यु से
हँसते हैं हमारी चिंताओं पर
कभी-कभी खोलते
हमारी आँखें
जब भूल चुके होते
चौंकना हम

मुर्दे-3

यह जीवितों के हित में है
कि बनी रहे
मुर्दों की नींद

बुद्ध

बुद्ध होना एक खता है
क्या फर्क पड़ता है
उसे शंकराचार्य
शास्त्रार्थ से तोड़े
या तालिबान
तोपों से

अहिंसा पाप है!

नींद

अगर तुम नींद में चल नहीं रहे हो
तो जरूर कहीं सोए पड़े हो
और इस समय
जागे होने का सपना देख रहे हो

भविष्य से बाहर

उम्र भर रहे जो
पाठ्यक्रमों में कैद
बेदखल हैं
भविष्य की पाठशाला से
कर रहे हैं रोज
खाली बरसों का हिसाब...
बे-हिसाब!

हत्याकांड-1

बन्दूक की ठंडी नली से उतरा
काफिरों के सीने में जेहाद
खुदा के बंदों ने किया
एक और गाँव आबाद...
जिन्दाबाद!

हत्याकांड-2

गमजदा पेड़ों के नीचे
जहाँ कतार में
जलाए गए हैं शव
काले धब्बे दीखते हैं
गाँव के एक्स-रे में

समाधि लेख

पूरी उम्र जो मरता रहा
सपने बचाने के गम में
एक दिन सपने में मर गया
इसी गम से

महोर (गाँव)

वे आते यहाँ
कुँवारी लड़कियों के लिए
उतारते थकान जेहाद की

मिट्टी के घरों से निकलते
चूल्हे के धुएँ-सी
हवा में काँपती
गर्भवती बच्चियों की आत्मा

छोटी-सी चुनौती

मेरी स्मृतियों को
कर सको जुदा उन तमाम चीजों से
जो अब तेरी हैं
तो मानूँ!
हवा की तहों में वास करती वहाँ
मेरी लहूलुहान आत्मा को भी
कर सको निष्कासित
तो मानूँ
दम है तुम्हारे जेहाद में

नमक

हिंसा की खबरों के साथ
जरूरी हैं 'विजुअल'
जैसे खाने में नमक
कहा दूरदर्शन समाचार संपादक ने,
और नमक से परहेज
तभी लाजिमी है
जब आशंका हो
रक्तचाप बढ़ने की

इन दिनों

किसी को नहीं बताती दीवारें
हमारे भेद
हमें कपड़ों की तरह ढकती हैं
हवा-पानी में ठिठुरती-भीगती
झुलसती हैं धूप में

हर तरफ से महफूज रखती हैं
हमें दीवारें इन दिनों

गीदड़ों का शांतिपाठ

शेर की भूख में
हमारी भूख
हम खाते हैं
यज्ञशेष्ट
राजा रहें स्वस्थ
रहेगी खुशहाल प्रजा भी
देश भी

हवा

हिलती हैं छायाएँ
सहम जातीं दीवारें
दरवाजे पर दी
वसंत ने दस्तक
घबराकर मैंने
हाथ में चाकू उठाया

गोली

वह जो मार गिराती है सबको
नहीं जानती
उसे किसने मारकर
यह आकार दिया है

तुम्हारे लिए

मुझे मंजूर है
तुम्हारी छड़ी बन जाना

कट जाना अपने पेड़ से

चीजें

जो चीजें
बच गई हैं चोरी होने से
लज्जित हैं
जैसे रेत में सीपियाँ

आशय

सुनो
?
!
ठीक है

पागल कविता

हम जब लिखते हैं कविताएँ
तो हँसते हैं ईश्वर

इधर पागलों ने छीन ली है
उसकी हँसी
पागल लिखते नहीं
जीते हैं कविताएँ
और हँसते हैं
ईश्वर पर।

2001

एक दोस्त का गरमकोट

तुम्हारे शहर से जाऊँगा एक दिन चुपचाप
सब कुछ यहीं छोड़कर
मेरे साथ जाएगी अलबत्ता
तुम्हारे गरमकोट की याद
मौत से ठिठुरते दिनों में
पहनाया था तुमने गरमजोशी के साथ

वह कोट मैं आज भी पहने घूमता हूँ
अतीत में
कितने मौसम हैं उस कोट की जेबों में
जिसके साथ खेलती रहती हैं
मेरी उँगलियाँ
उदास लम्हों में
मेरी आत्मकथा के कुछ तुड़े-मुड़े नोट्स
तावीजों की तरह पड़े हैं निर्वासन के
अँधेरे कोनों में यहाँ

कितना सुखद है कि जेबकतरे
कवियों की जेबें नहीं काटते

मैं भूल नहीं पाता तुम्हारा गरमकोट
देखना, मैं तुम्हारी यादों के लिए
सिलवाऊँगा
कफन में भी जेबें...

(शैलेन्द्र ऐमा. के लिए)
1996

चौखट

वहाँ टीले पर खड़ी है
दरवाजे की एक चौखट
अपना घर ढूँढ़ती हुई

अभी-अभी इससे होकर
गुजरे हैं हम
एक तरफ शून्य है
दूसरी ओर सन्नाटा
और हमें मालूम नहीं
इस समय जहाँ पर हैं हम
अतीत की गहराई है
या भविष्य का मौन

धूप और बरसात में
अकेली खड़ी यह चौखट
जैसे हवा में
किसी गहरे घाव का
सूखा हुआ निशान

1998

एक संग्रहालय

अतीत में सोई पड़ी
कई चीज़ें थीं वहाँ सन्नाटे में लिपटी
प्राचीन सिक्के, तलवारें, बख़्तरबंद,
कपड़े, कंघे और आईने
इतिहास की जादुई बर्बरता
पुरातत्व की उपलब्धि
दीवारों पर दर्ज थे उनके वृत्तांत

सिर्फ हमारे चलने की आवाज़
कर रही थी हवा में तरंगें पैदा
उस बेचैन कर देनेवाले
संग्रहालय में
जो कभी महल था पूर्वकाल में

एक बूढ़ा चौकीदार चलता रहा
हमारे साथ-साथ...
कभी सोने के पालने में यहाँ पर झूला
महाराजा का बचपन
यहाँ पर इस विशाल आईने के सामने
महारानी की खुली केशराशि में
कंघी की तरह उतरता था चंद्रमा

वहाँ पर सजती महफिलें
बजते सितार
झूम उठते आँगन में पेड़

गुप्त मंत्रणाओं और रहस्यों की तरह
आपस में गुँथे ठंडे और डरावने कमरों से
होते हुए करता रहा बूढ़ा चौकीदार
वर्तमान क्यूरेटर की तारीफ
भव्य है उसकी व्यवस्था...
रख-रखाव
यहाँ शिकायत नहीं किसी को
अपनी-अपनी जगहों पर सभी हैं चुप

मैंने बूढ़े चौकीदार की जेब पर
उसकी नाम पट्टी देखी
वह बैठ गया जाकर अपने स्टूल पर
संग्रहालय की एक वस्तु की तरह...

1999

भूकंप के बाद भुज[1]

एक

मलबे में दबे स्कूली बच्चों के
छटपटाते नन्हे पाँव
कर रहे हैं कदमताल
गणतंत्र-दिवस की यह शहीदी परेड
और सलामी ले रहे महाकाल...

दो

सोचा मैंने हमारे घरों पर
कर रहा है पाकिस्तान बमों की वर्षा
याद आया उसे
अस्पताल की खिड़की से देखते हुए
राहत का सामान उतारते
एक पाकिस्तानी जहाज को

1. 8 फरवरी, 2001 को अहमदाबाद, अंजार और भुज से लौटकर।

तीन

एक बहुमंजिली इमारत के मलबे के नीचे
कहीं अँधेरे में
एक बलात्कारी के आँसू गिर रहे हैं
उस अधकुचली लड़की की
खुली रह गई हथेली पर
जो पलट जाती है अनायास

यह भूकंप का एक और झटका है
लड़की की स्मृति में

चार

आकाश की छत है
धूप और हवा की खपरैल...
गमछे हैं फर्श
झुर्रियों में यादों की धूल

यहाँ लोग
रहते हैं ब्रह्मांड में
खबरों से बाहर कुंठा-विहीन
निरावरण..

पाँच

खँगाल रहे हैं आँसुओं को
गोताखोर
आपदा के तल में
        बहुत मोती हैं
इस समुद्र पर
सबकी आँख है!

2001

हो ची मिन्ह से

दोस्त, मैं भी लड़ता रहा
लगातार
अकेले पड़ते जाने का
आदी होता हुआ

मिला नहीं
कोई हरा पेड़
जो उतरता मेरे फेफड़ों में
अपनी हरियाली के साथ
न कोई मिली नदी
जिसकी ठंडी तहों में सुस्ता लेता
कुछ देर
मैं लड़ता रहा रात-दिन
कि कहीं आखिरी बाजी में
भूल न चुका होऊँ
लड़ने की आदत

(बी.एम. ब्यास के लिए)

Dissus VITASTA

रेत

तुम्हारे भीतर संवेदनाओं के ऊपर से
जब स्मृतियाँ उड़ती हैं
बनाती हुई लहरों के अक्स
विस्फारित नेत्रों से देखते हैं तुम्हें
कलावंत
कुछ मनाते जश्न
नाचते ऊँट
कुछ करते शोध
तुम्हारे नदी होने के दिनों का

मैंने भी उलीची थोड़ी-सी रेत
तुम्हारे सन्नाटे और अवसाद में
अकेली थीं तुम अपने साथ
उकेरी मैंने भी कुछ रेखाएँ
तुम्हारी लहरों पर
नम आँखों से खिलाया तुमने
अन्नपूर्णा की तरह मुझे आह्लाद
उस वक्त थे
आकाश में कहीं मेघलोक में हम
अपने वजूद के तल से
उमड़ आई थी
आँसुओं की एक बची हुई धार

मैं लौट आया वापस
छोड़कर पाँवों के अनमने निशान
हे भगवान,
आज मैं समझ रहा हूँ
कभी इतनी बड़ी नदी
कैसे सूख गई होगी यहाँ
तुम्हारे जीवन से।

2001

संसार की सबसे ऊँची सड़क पर

होटल से चुराया सफेद खेश
माँगीं लिपस्टिकें लड़कियों से
जों साथ थीं पर्वतारोहण पर
बनाया तिरंगा
नींद, स्वप्न और अधरों के सामान से
कुछ सच्ची
कुछ झूठी आजादी की
स्वर्ण जयंती पर
एक प्रश्नाकुल आँखोंवाली लड़की ने
चुम्बनों से बनाया अशोकचक्र
खरदुंगला[1] की बेजान चोटी पर
घुटते हुए
जैसे इतने बरस
खरदुंगला की तरह ही
हमने ऑक्सीजन के अभाव में
मनाया जश्न अपनी मुफलिसी का
संसार की सबसे ऊँची सड़क पर
मैं नाचा जीवन में पहली बार
सवालों के पहाड़ पर
पागलों की तरह

(अनामिका के लिए) 1997

1. लद्दाख में 18,380 फुट ऊँचा पर्वत।

कविता का रंग
(सिल्विया प्लैथ के लिए)

बरसों अच्छी कविताएँ
लिखते रहने के बावजूद
तुमने की आत्महत्या...
जमीन में जज्ब हो गया
        तुम्हारा लहू
बहता हुआ लहू
जिसे तुम कहती थीं कविता

वहाँ पर
लोगों ने देखा
गुलाब का सुर्ख
        तीखा रंग
उड़ गए उनके होश

जैसे कहा गया हो
तुम पर फिदा हो जाना
लिखना बहता हुआ लहू
अपने एकांत में

1996

मंत्र

उस आदमी ने
प्रार्थना में उठाए हाथ
और उसके हाथों में
आकाश से गिरा
        एक मंत्र।
उसे यकीन हुआ
वह इस सदी का कोई पैगंबर है

वह बदल गया समूह में
और समूह ने उसे बदल डाला
        एक मुहावरे में।
फिर वहाँ
हर बस्ती में जली आग
जिसमें रात के समय
जुटाया धर्म ने ईंधन

तप गई अलाव में भीड़
और ये धूपीले दिन हमारे
बदल गए
        अँधेरे बीच-मंत्रों में
धीरे-धीरे

ब्रह्मांड में यह पृथ्वी
बदल रही है
उन्माद के बीजाक्षरों में

1999

दिल्ली अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर

यह संभ्रांत चेहरों की दमक...
आलोक में कुंठाएँ तैरती हुईं...
        यह नरम-नरम कुर्सियाँ खाली
                सुन रहीं आहटें।
चारों कोनों में रंगीन टी.वी.
जैसे चार धाम
        ध्यानस्थ हैं आर्यजन।

बार-बार घड़ी देखकर
जगहें बदलते
        कुछ भद्रपुरुष
(बर्नार्ड शॉ ने ही कहा था न...
        संतोष है मृत्यु)
ट्यूब लाइटों के प्रकाश में
दिखाई पड़ती मुझे
चप्पल की नोक पर
सूखी हुई कुछ कीचड़

सामने हिल रहे हैं
समय बिता रहे कई चमकीले जूते
हँसते हुए
मेरी गँवार उपस्थिति पर

मैं पढ़ रहा हूँ ओक्तावियो पॉज की कविताएँ
सनमुख बैठती है एक बच्ची...
ऐसे ही प्रकट होते होंगे ईश्वर
(दो-दो बच्चों का पिता मैं
नहीं हो सकता नास्तिक)

एक जापानी महिला गोल सुनहरी फ्रेम के
चश्मे के पीछे से देखती है
काँच की दीवार से बाहर

शून्य और तन्मयता...
या कि विरह और निर्लिप्तता।
वह अधेड़ युवती
कागज की रुमाल में तहाती है
अपनी छींक
गुजरती है पास से
विदेशी सेंट की एक लकीर...
याद आ रही मुझे अपनी आयु
कालातीत है ययाति...

मैं उतरता हूँ एस्क्लेटर से
फर्श पर
चमकती है सूखी कीचड़
मेरी चप्पल की नोक पर

1997

विस्थापन ?

एक याद

बीहड़ वन में चलते
कहीं से आई एक विरल गंध
बचपन में सूँघी हुई
मातामाल[1] के पिछवाड़े
खेल-खेल में देखे
एक सपने की गंध

कितनी मुद्दतों से मुझे
ढूँढ़ती फिरती रही होगी
ब्रह्मांड में...
और मैं निरा लम्पट
जंगल में भटकता दगाबाज...

1996

1. ननिहाल

Very good Prem

किताब

बरसों के बाद आई
जेब के खर्चे से छपकर
गिनीं देर रात तक
कुछ सौ अदद प्रतियाँ
लगाया उड़ता-सा हिसाब
कितनी बँटेंगी मुफ्तखोर मित्रों में
बिना पढ़े सजेंगी शेल्फों पर
फिर मैंने बनाई
संपादकों और समीक्षकों की फेहरिस्त
दी गाली सबको
फिर आई हँसी मुझे
अपने फोटो और परिचय पर
इतनी बड़ी आबादीवाले देश में
कितने लोग पढ़ेंगे
मेरी कविता
इस वक्त
इन्हीं शब्दों में
मैं चंद लोगों से कर रहा हूँ बात
खून-पसीने की कमाई
फूँक कर...
इतनी-सी उपलब्धि
मेरी किताब

Very good

2001

स्मृतिवन

जिस मुक्ति-कामना से
हमें खदेड़ा गया जड़ों से
उन खाली जगहों में
उग आई है
हमारी स्मृतियों की फसल

हमारे वीरान और अधजले पड़े
हजारों घरों के मलबे
खाद में बदल रहे हैं
मेरे सरसब्ज वतन के लिए
इस हरे रंग में
नमक है मेरी अस्थियों का

सुरक्षा बलों की आँख बचाकर
इन टूटे-फूटे घरों की
भग्नाशाओं में छिपे बैठे मुजाहिद
चिढ़े हैं हमारी काफिर स्मृतियों के
सब्जे से
गुस्ताख हैं
दरो-दीवारों से झाँकती हैं
हमारी छायाएँ

जिस मुक्ति-कामना से
हमारे शरीरों में तपती थीं
हमारी आत्माएँ
वे भी देहावसान के बाद
भटकना पसंद करती हैं
अपनी मातृभूमि में
निष्फल हो रहे हैं
पीरों-फकीरों के तावीज
समझ नहीं आता है किसी को
हमारा यह अदृश्य खेल।

1999

V good

व्यंग्य - BJP

वे

दधीचि हो तुम!
कहा उन्होंने हमारे पास आकर
दरअसल उन्हें अपने भय से
पाना था पार
उन्होंने सहलायीं हमारी हड्डियाँ
बना लिए उनसे हथियार

हवा में दब गई हमारी चीत्कार...
निर्वासन में

1992

Pl. Explain

?

समुद्री जहाज की रात

यह घूमती हुई पृथ्वी
कहाँ पूरी तरह डूब जाती है
विकराल अँधेरे में
इस समय
दिख नहीं रहे हमें अपने हाथ-पाँव
इन्हीं लम्हों में लेकिन
क्या लहक नहीं रहे हैं
रोशनी में कुछ देश
यह कितना सुखद है
एक ही समय में होते हैं पृथ्वी पर
बहुत से समय
अस्थायी है हमारी जमीन पर पसरी
यह रात
और बहुत छोटी है
एक दक्षिण-ध्रुवीय रात के सामने

हम जब अवसाद में पड़े-पड़े
सोच रहे होते हैं
हथियार छोड़ने की बात
यह पृथ्वी हमें ले जा रही होती है
उजास की तरफ

1994

जीनोसाइड

ठंडे पानी के पतीले में
तैर रहा मेंढक
नहीं जानता
अलाव है उसके नीचे

पाद टिप्पणी :
इन दिनों एक प्रयोगशाला में
रहते हैं हम

1998

V. good

?

प्रधानमंत्री और मक्खी

हम उन्हें सुना रहे हैं अपना दुखड़ा
कहीं से आकर एक मक्खी
कर रही है उन्हें बार-बार तंग
कभी नाक पर बैठती है
तो कभी माथे पर

मैं अपनी बात का सूत्र थमाकर
दूसरे साथी को देख रहा हूँ
मक्खी के साहस को
उसके जीवट को
क्या वह अरसे से
प्रधानमंत्री कार्यालय के चक्कर काटती
रही होगी भिन्नाती पूर्वजन्म की माँगें

अगर मेरा भविष्य भी है इसी मक्खी-सा
जो इस समय बैठी है
प्रधानमंत्री की सफेद कमीज पर
मैं भी लगना चाहूँगा उस पर एक दाग जैसा
लोकतंत्र की अंतिम साँस तक

हम भिन्ना रहे हैं अपना दुखड़ा
वह सुन रहे हैं चुपचाप शायद ध्यान से
चेहरे पर प्रवेश-निषेध है
किसी भाव के लिए
इसलिए कहा नहीं जा सकता
कि क्या सोच रहे हैं प्रधानमंत्री इस समय
तरस खाते हैं मक्खियों पर
या उनसे आ चुके हैं तंग
या देंगे आदेश खड़े होकर
पूरे देश में दवाई छिड़कने का

जब देश में रहेंगी नहीं मक्खियाँ
तो उनके कार्यालय में घुसकर
नहीं बैठेगी कोई मक्खी उनकी नाक पर
और भिन्नाएँगे नहीं
हम जैसे लोग बार-बार अपनी माँगें

प्रधानमंत्री आँख मूँदकर सुन रहे हैं
हमारी फरियाद
शायद सोये नहीं हैं
आँखें मुँदी हैं..
मक्खियों के डर से

2001
(महेश भट्ट के लिए)

दृष्टि

वह भाषा में उतरकर
कूदती है भँवर के तल तक
रचती खुद को
कभी ओस और कभी आँसू को
चीरकर दो फाँक
उसके भीतर के बीजों में साँस लेते स्पेस,
काल, पदार्थ और ऊर्जा को बनाती
कविता का कच्चामाल
जिससे घूमने लग पड़ती चाक पर
बातों से भरी पृथ्वी

हाँ, कवियों के मन में सबसे पहले
छपती हैं कविताएँ हवा के पन्नों पर
फिर चलती हैं साथ हमारे
आवेश और संघर्षों के तमाम खतरों तक
चमक उठतीं श्रमजीवियों के पसीनों में
और कुछ रह जातीं जीवन भर अलिखित ही
देखतीं हमें आकाश से हर क्षण
जैसे कोई हुतात्मा की आँख हो
यही है कवि की तीसरी आँख
रोशन करती गहनतम अँधेरों को

या तलाशती हुई आवाज़
करती कोशिश पहुँचने की
भग्नाशाओं के मलबे में फँसे
निष्पाप लोगों की कराहती आत्मा के पास

यह दृष्टि ही जन्म देती भाषा को
जिसमें उतरकर हम रचते खुद को...
एकांत में

2001
(ज्योति लांजेवार के लिए)

शरणार्थी शिविर

1

यह रास्ता
मरघट से होकर जाता है
मेरे शरणार्थी-शिविर को
तोड़ता है नियम काल के
बच्चे खेलते हैं यहाँ दिन-भर
बूढ़े फूँकते हैं बीड़ियाँ
जमा होता उनकी झुर्रियों में अवसाद
कितनी अदीख फ़सल है
हमारी घायल स्मृतियों की यहाँ
यह रास्ता
मरघट से होकर पहुँचता है
हमारे पास
जहाँ हम हर बार
हज़ारों बार
दुहाराते एक ही मंत्र—
मातृभूमि...
मातृभूमि...
मातृभूमि...

V. gour

2

पहले कभी नहीं आए
हमारे पास
जब बिलखते थे हम
अब आते हैं
विदेशी राजदूतों के साथ
चहकते हैं हम
जीवित संग्रहालय में

3.

हम उनकी मज्जा हैं
रक्त हैं उनकी धमनियों में दौड़ता
वे हैं अधूरे
बिना हमारे
कहते फिरते हमें धकेलकर
शरणार्थी कैंपों में
बज रही हैं तालियाँ
हत्यारों की उदात्तता पर

4.

अरे, तुम क्यों भागे
किसी ने कहा था क्या तुमसे कुछ
मारा किसी ने
या धमकाया
आ गए बहकावे में गवर्नर के

कितना अजब है
हत्यारे अब अपनी तरफ से भी
होने नहीं देते शर्मिंदा...

5.
एक बन्दूक
सीने पर है
एक पीठ पर
मैं दमे का मरीज
हो गया हूँ ठीक
निःशब्द

Discuss

6
बाखुदा!
मकान तुम्हारा है ठीक-ठाक
कश्मीर में
पड़ी है वक्त की धूल
पर हैं महफूज तुम्हारी यादें
बंद हैं खिड़कियाँ आज भी
अलबत्ता एक कमरे में कुछ देर
जलती है कभी-कभार रोशनी
आती हैं
रोने की आवाजें
किसी जवान औरत की चीखें भी
काँपते हैं हम थर-थर
पर सुबह
बाखुदा! मकान तुम्हारा
दिखता है ठीक-ठाक

Excellent
V. good

7.
जैसे पूछी नहीं जाती
भेड़-बकरियों की राय
सरकार हमें
टैंटों सहित
ले जाएगी वापस
शेरों की माँद में

Excellent

8.

बाहर भीतर
बची नहीं है कोई जगह
मैंने मरघट पर यहाँ
कुछ देर बैठकर
महसूस की शांति
गोया मृत्यु-सामग्री की
कोई पुड़िया हो

9.

जगमगा उठी हैं मोमबत्तियाँ
उदास और पीली रोशनी का उत्सव
बच्चे पेड़ों के नीचे
अँधेरे में
खेल रहे
घर छोड़ने का खेल...

10.

मरघट की दिशा में
झाड़ियों के पीछे
उन्हें मिला हफ्तों के बाद
प्रेम करने का एकांत
पकड़कर ले गई पुलिस उन्हें
हँस-हँसकर बिलखते हैं
लोग अपने दांपत्य पर
तरस खाता है मरघट
हमारे विस्थापन पर

11.

पड़ोसी ने माँगी सुई
माँ ने टैंट के कोने से कहा मुझसे

ले आना अलमारी से
उसका डिब्बा
अवाक् रह गया मैं
माँ थी घर की स्मृति में
और सामने धूप में बाहर
एक विस्थापित कर रहा था
सुई का इंतजार

12.

इस बारिश में
कैंप के पिछवाड़े
मुर्दा भैंस के कंकाल में छिपाकर
रख आता है एक बच्चा
अपनी पतंग
तम्बू से उठ गया है
उसका विश्वास

V. good

Already discussed by me

सेंसर

वह जो आईने में है और सिर्फ तुम्हारी नकल
उतारता है
अपना वजूद तुम्हारे अक्स में घोल देता है
वह तुम्हारे अंदर बैठा रहता है
गंदले पानी की बावड़ियों के पास
तुम्हें रोकता है
खदबदाती बातों को कहने से
वह चमड़ी की तरह ढककर रखता है
हमारे भेदों को
उन्हें नंगा नहीं होने देता
गोया एक जांघिया हो

तुम कितने ही नव-ध्रुवांतों से
धूल फांकते आकर भी
बाथरूम में बिना कच्छे के नहाने से
शरमाने लगते हो

वह जब भी आइने से बाहर निकलता है
किसी संपादक के केबिन में
बैठा मिलता है मोटे लैंस के चश्मे के पीछे
या फिर किसी वकील के चेंबर में

कानून की किताब पढ़कर
जिरह करता है

और यह सब तुम्हारे भीतर घटता है।

2001

भगतसिंह की पुण्यतिथि

कविताएँ पढ़ीं हमने
वक्ताओं ने सुनाए संस्मरण
तालियाँ बजाईं हमने
पर भगतसिंह को देखा नहीं
किसी ने हमारे बीच भेस बदलकर
वह सुनता रहा हमारी रूखी कविताएँ

हम जब फिदा हो रहे थे
रूपवादियों पर
वह हँस रहा था हमारे छद्म पर

भगतसिंह चौंक पड़े
कि बढ़ती जा रही है देश की जनसंख्या
वह पूछता रहा बेआवाज
कि उसकी फाँसी के बाद
कितने लोग हुए हैं सच में पैदा
क्या रामप्रसाद बिस्मिल के बाद
किसी ने लिखी है अपने लहू से कविता
कितने बच्चों का नाम रखा गया है
अश्फाक उल्ला खाँ
वह हो उठा बेचैन अपनी बेबसी पर

न तो हम उसे देख पा रहे थे
न उसकी बात हम सुन रहे थे
उसे छू सकने की बात थी दूर
जब दूरदर्शनवाले कर रहे थे
आलोकित
मंचस्थ चेहरों को
शहीद भगतसिंह ने उठकर
हममें से हरेक के सिर पर रखी अपनी टोपी
फिर बाँधी टकटकी
टोपी उछलकर वापस जा बैठती
भगतसिंह के सिर पर

उसने शुक्र मनाया
कि आज उसे संसद के
किसी मार्शल ने नहीं देखा
जो बाहर धकेलकर उसे समझाता
कायदा कानून
वह उठकर गया कवितापाठ से बाहर
सोने के लिए कल देर तक
और अखबार नहीं पड़ेगा

1997

Discuss

तमाम उम्र
(ओक्ताविओ पॉज की एक कविता पढ़कर)

इच्छाएँ मेरा घर थीं
तमाम उम्र रहा अकेला उनमें

संसार की तमाम कब्रों में
दफ़न हूँ मैं
आकांक्षाओं के साथ
सपनों की मिट्टी है मेरे ऊपर

1996

Idea !!
Discuss

आँगन के पार से

एक

आँगन के पार से
तुम्हारी एक झलक ने
ढहा दिया बीच की दीवार का हौसला

हमारे बँटे हुए आँगन खुश हैं
बच्चों की तरह
घुलमिलकर आपस में

तुम्हारी मुस्कान से
पिघल रही है मेरे भीतर
जमी हुई बर्फ

बह रहा हूँ मैं नदी की तरह
तुम्हारी परछाईं लिए
अपने साथ...

दो

तुम्हें देखता हूँ
तो अब तक की देखी हुई दुनिया
अदृश्य हो जाती है

तुम मेरे सामने हो
मेरे सरोकारों में ईर्ष्या जगाती हुई
दोस्तों की जवाब माँगती चिट्ठियों को
ज़रा-सा हताश करती हुई
मेरी दिनचर्या को थोड़ा-सा
चकमा देती हुई
तुम्हें देखता हूँ
और नहीं डरता कि गलत समझा
जा रहा हूँ
मेरी नंगी होती जा रही जड़ों को
खाद की तरह ढक रही हो तुम

नहीं डरता
किसी की बदनजर से भी
डरता हूँ कि मैं तुम्हें देखता हूँ
और यह दृश्य
पलक झपकने से न हो जाए गुम

तीन

पूरे वायुमंडल पर लिखी
तुम्हें देखकर कविता
आकाश के नीले लिफाफे पर
चिपका दी यह पृथ्वी

एक डाक-टिकट की तरह

नहीं मिला आज तक
वह लेटर-बॉक्स
जिसमें डाल सकूँ आसमान
जिसमें धड़कती है मेरी कविता

मैं तुम्हारे लिए एक ब्रह्मांड लिए
घूम रहा हूँ हृदय में
जैसे मन्वन्तरों से..
कहाँ हो तुम?

चार

दीवार के पार
उछलकर जाती है तुम्हारे आँगन में गेंद
मुझे लगता है
यह दीवार थोड़ा झुककर
गुजरने देती है गेंद को
अपने ऊपर से
गेंद
तुम्हारे पास ले जाती है
मेरे स्पर्श
चिंताएँ और आकांक्षाएँ मेरी
और झाँकती है हमें आर-पार
कभी जाती है गहन अंतरिक्ष में
यह गेंद
कभी अतीत के अँधेरों में
जैसे दोनों हों वर्तमान

यह गेंद है
जो दीवारों के बावजूद
हमें शामिल करती है
अपने खेल में

पाँच

दीवार के पार
चाँदनी में घुल रही हैं
पखुंड़ी-सी बातें
मैं देखता हूँ खिड़कियों के काँच से
तुम आँगन में
टहल रही हो अकेली

मुखर है तुम्हारा मौन।

मैं सुनता हूँ
अपने दिल की दस्तकें
और उतारता हूँ दीवार के पार
तुम्हें टटोलता हुआ हाथ
जिसमें तुम थमा जाती हो
कविताओं के बीज
जिन्हें बचाकर
मैं जाऊँगा नई शताब्दी में
हताशाओं के बावजूद

छह

सपने की तरह चली गई हो तुम
दीवार के पार से
झाँकता है सन्नाटा
चीजों के अर्थ हो गए हैं सपाट

चिड़ियाँ तुम्हारी छत से उड़कर
मेरे कमरे की तलाशी लेने आती हैं
हवाएँ पूछती हैं तुम्हारा पता
आकाश से कटकर गिरी
एक पीली पतंग
झूल रही है
            तुम्हारी छत से
सभी स्मृतियाँ खुलना चाहती हैं एक साथ
तुम्हारे दरवाजे के ताले की तरह

1999

नरक पर एक मिनट की फिल्म

बर्फ की आबोहवा से बाहर
जून की उमस भरी रात
पसीने से चुहचुहायी
मेरे कॉमरेड दोस्त की अस्थि-पिंजर दादी माँ
पोपले मुँह से लेती है जैसे गिनकर साँसें
तेजाबी धूप में
गल चुकी उसकी कमजोर हड्डियों से
चिमटी जिल्द की झुर्रियों में
समय की तल्खी...
डूबती उबरती है बची-खुची नब्ज
जैसे प्राचीन सभ्यता की
अवाक् है
बुढ़ापे में निष्कासित वनमाल[1]
बेलौस आकांक्षाओं-सी फैली
बर्फ-देश की अधिष्ठात्री देवी
पिघल रही है
धूप में

हम बना रहे हैं 'जीनोसाइड' के खिलाफ

1. वनराजि के लिए कश्मीरी शब्द, यहाँ दादी-माँ का नाम

कल निकाले जानेवाले जुलूस की रूपरेखा
अकस्मात् गुल हो जाती है बिजली
जैसे डूब गए हों हम
उबलते काले समुद्र में
अब कोई शरणार्थी कैंप नहीं...
'एग्जोडस' नहीं...
'जीनोसाइड' नहीं..
'नस्ल भेद' नहीं...
कोई 'डायस्पोरा' नहीं...

निःशब्द है रात
सक्रिय है उमस
गुम हैं हम
जैसे समकालीन इतिहास में

तंबू के उस कोने से
बुदबुदाने लगती है दादी की पीठ पर
पसीने की धार
''प्रभु, मोरे!
नरक से मोहे उबार..''
और काँपती है प्रार्थना-पंक्ति
टूटती मौन में

''यह है विस्थापन पर
एक मिनट की फिल्म...''
मैं कहता हूँ अपने दोस्त से
जो शायद पसीना पोंछ रहा है
अँधेरे में...

डायना की स्मृति में

राजमहल से बाहर
चाँदनी में चमकती कीचड़ को महसूसना
अपने ही भीतर
स्वर्ग की घुटन से
खुलना जन्मांतरों की नींद...
स्वप्न में फुफकार उठना
जैसे किसी नाग का
और तोड़कर काँच की दीवार
निकल आना सड़क पर
और चूमना एक-एक निर्दोष भूखे शिशु को

पहली बार देखा तुमने
उदास आँसुओं में अपना प्रतिबिंब :
संदेह
अपनी ही मुस्कान पर
पतले अधरों पर ठहरे हुए सुर्ख चुंबन
झूठे हैं
पलकों पर बेजान सुगंध फैली हुई
जैसे घास पर सूख रहे
किसी के रुमाल
है न संचित स्वप्न की तरह

यही वो क्षण
लौट आया जाने किसी तारागण से
जीवन के ढर्रे को बदल देने का मन
है संस्मरण स्मृति का
यही है प्रारब्ध
बदलते रहना प्रेमास्पदों का
छाँट लेना पत्रों के अंवार से अन्ततः
अपनी चिट्ठी
आत्मा के बीजाक्षरों से लिखी हुई
मंत्र!
जो मिला तुम्हें एक सीपी में
सदियों से तुम्हारी करता हुआ प्रतीक्षा
उसे कौन छीन सकता था तुमसे...

फिर भी
एक परीकथा के दुखांत-सी
तुम्हारी मृत्यु
समय की सबसे बड़ी पराजय है...

1997

अभयारण्य

बोलो क्या किया
आतंकियों ने तुम्हारे साथ, ओ स्त्री!

कैसे बचाकर जान
चली आई देर रात
हमारे पास?
विस्तार से बताओ
क्या हुआ तुम्हारे साथ
बिलखती रही
थाने में स्त्री
प्रश्नों के जंगल में
दौड़ पड़े तेंदुए
जबड़ों में उठाकर ले गए
उसे अभयारण्य में
जहाँ पहुँच नहीं सकते
किसी भी गुट के आदमी

2001

कश्मीर से फोन
(राज रैणा के लिए)

मत रो सबिया, मेरी बच्ची
ये दिन बदल जाएँगे वहाँ भी और यहाँ भी
टेलीफोन से टपक रहे तुम्हारे आँसू
मेरी गोद में गिर रहे हैं
यहाँ शरणार्थी-कैंप में

मत रो पुत्तर
ये आँसू इस सदी का निचोड़ हैं
इनके भरोसे ही हम जी सकेंगे दूसरी सदी में
नम संवेदनाओं के साथ

देख मेरे बेटे
तुम्हें रोता हुआ देखकर
बेचैन हो रहे हैं
वे हजारों-हजार मारे जा चुके हमारे भाई-बंधु
जिनकी लाशों को नहलाकर
आँसुओं से अंतिम बार
हमने सुला दिया जिन्हें जमीन में
या सौंप दिया अग्नि को
कुछ घर में
कुछ निर्वासन में

थाम लो सबिया कुछ और दिन
अपने आँसुओं को
हम जाएँगे एक साथ किसी सूफी कवि के
मज़ार पर
पढ़ेंगे अल-फातिहा बीते हुए दिनों पर
या किसी अज्ञात पूर्वज के तीर्थ पर
रोएँगे ज़ार-ज़ार
अपने किए-अनकिए अपराधों पर
धो डालेंगे धरती से पाप

मत रो सबिया
हवाएँ मुखबिर हो गई हैं
यह समय हमारा
खून भी पीता है और आँसू भी
हम कब तक बहाएँगे
खून के आँसू...

1999

Discan

कैलिफोर्निया में केंकड़े

हम बढ़ते हैं बहस में उलझे हुए
एक आत्ममुग्ध रेस्तराँ की तरफ़।

सेन-फ्रांसिस्को के पियर-39 पर
उतर रही है शाम।

"उधर देखो
वह रसोइया सीटी बजाता हुआ
जिन्दा केंकड़ों को डाल रहा है
उबलते पानी में
और दूसरा उन पर मसाले और सॉस
छिड़ककर यंत्रवत्
सजाता है प्लेटों में"
कहता है मेरा प्रवासी मित्र
जिसकी आँखों में
भर गई है नीली आँखोंवाले देश की चालाकी
यह रंग चढ़ता है शराब की पहली घूँट से यहाँ
हिल्लौरें लेती है आत्मा
अतलांत के पानी में

उधर केंकड़े उबलकर फूल रहे हैं कड़ाही में
एक दूसरे की टाँग खींच रहे हैं केंकड़े
केंकड़े गा रहे हैं उबलते पानी में
नाच रहे हैं सेन-फ्रांसिस्को के बीच पर
केंकड़े पोतकर सुनहरी और रुपहले रंग
गिटार बजाते माँग रहे हैं भीख
केंकड़े झूम रहे हैं यहाँ
अपने देश से दूर
मेरी पीठ थपथपाता है मेरा दोस्त
''अमेरिका में
कवियों के लिए स्पेस
और कलाओं के लिए समय नहीं है''
कहता है वह।

मैं आता हूँ रेस्तराँ से बाहर
काँच के पीछे से पुकारते हैं रसोइए
शालीनता के साथ।
क्षुब्ध है मेरे दोस्त की
आँखों में अतलांत का जल
और अधूरी बहस
मेरे देश की हालत पर...

1999

न्यू यार्क-I

वह खड़ा है शहर के ऊपर बने त्वरित
फ्लाई-ओवरों के ज्यामितीय रेखाजाल में कहीं
किसी पखेरू की सूखी बीट-सा निर्जीव
हाथ में कटोरा
गले में तख़्ती :
हेल्प मी!

दूसरे मोड़ पर वह डस्टबिन में झुककर
बीनता है प्लास्टिक के डिब्बे
जूठा भोजन...
हाथ में तख़्ती :
मैं अनाथ हूँ!

मैन-हाटन के व्यस्त बाजार में
वह आँखों-आँखों चुन रहा है
हजारों बेशकीमती रंगीन कारों की पाँत में
एक कार
जिसका मालिक व्यस्त है कहीं
अन्तर्राष्ट्रीय मंडी के मूल्य-निर्धारण में...
सूचित करती है उसकी तख़्ती
कि वह बेघर है न्यू यॉर्क में

रात को ये बूढ़े जमा होते हैं
न्यू यार्क के नाचघरों से बाहर आती रोशनी
और संगीत से दूर
नींद के जंगलों में
खाते भर-पेट सेंडविच और हेमबर्गर
पीते शराब कैसिनों में
दौड़ाते मैन-हाटन की सड़कों पर
पंखोंवाली कारें
फिर सो जाते
दूसरी सुबह जाग पड़ने के लिए
न्यू यार्क में...
हेल्प मी!

1999

LMP

न्यू यार्क-II

मेरे सामने इस ड्राइंग-रूम में
आदमी के कद से बहुत ऊँचा है काँच का एक
पेपरवेट
इसमें समुद्र की सी लहरों में ये रंग-बिरंगे
फूल और पत्ते दरअसल उपमहाद्वीप हैं
वनस्पतियों के वैभव और चिड़ियों की
चहक के साथ
सलीके से व्यापी हुई खामोशी
काफी सम्भ्रान्त है काँच के संसार में

अगर इस पेपरवेट के भीतर से देखा जाए
तो न्यू यार्क की इस इमारत के
28वें तल का यह कमरा भी
एक पेपरवेट ही है
करीने से सजी हुई हरेक बहुमूल्य चीज
दुबकी पड़ी है खामोशी में
पेंटिंग्स, फर्नीचर, छत से लटकते 'झूमर'
यहाँ बरसों से किसी जीते-जागते आदमी का
एहसास ही गायब है

मैं हाँफ रहा हूँ काँच की दुनिया में
इन दिनों सोचते हुए अपने देश के बारे में

1999

एम्स्टर्डम के रेड लाइट एरिया में

काँच के पीछे
एक नंगी औरत पढ़ रही है किताब
जैसे हो किसी कालजयी उपन्यास की नायिका
या कोई महान रचनाकार
बाकी नंगी स्त्रियाँ
खड़ी हैं व्यंग्योक्तियों की तरह
अपने-अपने काँच-घरों में
कौंधता है होटल जाकर
कविता लिखने का विचार
तिलमिला उठता हूँ रेड लाइट एरिया में
अपनी क्षुद्रता पर

वह नंगी औरत जो कुर्सी में बैठकर
पढ़ रही है किताब
याद दिलाती है मुझे खुद की ओट में
मेरे किए हुए पाप

वह स्त्री नंगी होकर
पढ़ रही है किताब
मैंने कभी नहीं इस तरह पढ़ी है
अपनी किताब
सबके सामने बाजार में

1999

जेहाद

घुस आया
काफिरों के घरों में जेहाद
बनवाया पहले कहवा
पड़ी कुछ दालचीनी
कुछ इलाइची कुछ केसर
जैसे गाढ़े खून में
लाजवाब होता है
कुफ्र का स्वाद
देखकर उनकी बंदूकें
छिप गया चिनार के खोंखड़ में जाकर
एक तेरह बरस का मासूम बच्चा
देखता रहा जमी हुई नज़रों से
माँ-बहनों का सर्वनाश
लाशों के छटपटाते ढेर
चिनार के खोंखड़ में
खो रहा था सिसकियों के अँधेरे में
वो तेरह बरस का बच्चा

'यह नहीं है इस्लाम!'
रो पड़ा फूट-फूट कर एक मुसलमान
देखकर एक बरस की नन्ही जान का

Check
Vardhamane

छलनी शरीर...
अट्ठारह सुराख!
'हे पवरदिगार!'
खायी उसने भी एक गोली
सहम गया अँधेरे में गाँव

चिनार के खोंखड़ से
आज भी आती है
एक बच्चे के सिसकने की आवाज़

(वंदहामा हत्याकांड के एकमात्र गवाह तेरह वर्षीय विनोद कौल के लिए)
1999

तुम्हारी याद

तुम्हारी याद
जैसे सर्जरी के दौरान
भूल से रह गई हो
          दिमाग की नसों में
एक महीन सुई...

तुम्हारी याद
जैसे नींद में
धीरे-धीरे फैल गई हो
कहीं से
चूल्हे की गैस...

तुम्हारी याद
जैसे कर्फ्यू लगी अँधेरी रात में
कोई आदमी नींद में
          सड़क पर दौड़ रहा हो...

तुम्हारी याद में
मेरी नसें फट रही हैं
जल जाऊँगा अभी मैं
शायद मैं कहीं मार दिया जाऊँगा
गोली से

1998

पंचांग और स्टेथस्कोप

यह शहर एलोपैथिक दवाइयों
और पंचांग के बीच
जेब में नुस्खे या तावीज लिये
जीता है घड़ी के पेंडुलम की तरह
अपने अक्षांश और रेखांश के बीच

एक भू-मध्य रेखा बाँटती है लोगों को
क्या इसीलिए वंचित नहीं
हमारी आबादी का एक बड़ा हिस्सा
भूगोल के ज्ञान से

कभी स्टेथस्कोप
कभी राशिफल
बताते हमारा इतिहास
यहाँ जोड़ती भू-मध्य रेखा
श्मशान और मजार को
टेलीफोन की तरह
गोया ज्योतिषी और चिकित्सक
कर रहे हों कानाफूसी

यहाँ जो लोग
इन दोनों को करते हैं नापसंद
वे एक दिन पाते खुद को
नए शहर की तलाश में
बुनने लगते हैं मन में
कुछ ऐसी ही योजनाएँ
और लौटकर नहीं आते
स्टेथस्कोप
और
पंचांग के बीच की दुनिया में...

1999

हत्याओं के खिलाफ

एक और हत्याकांड के खिलाफ
निकलता है हमारा जुलूस
रास्ता रोके
सामने खड़ी है पुलिस
गैर वाजिब है
महात्मा गाँधी पर
हमारा शोक मनाना
दहाड़ें मारता है मेरे पीछे
लहूलुहान आत्माओं का सैलाब
"अग्निशेखर, आगे बढ़ो
हम तुम्हारे साथ हैं!"
उछलते हैं नादें
हमारे आयुध।
अड़ी है पुलिस
करता हूँ जिरह
अड़े हैं हम भी
बरसेंगी लाठियाँ
आँसू गैस के गोले
फोड़ा जा सकता है आज भी
विचारों से भरा मेरा सिर
पीछे से धकियाते हैं घाव

आगे तनी हैं बंदूकें
जो करती नहीं लिहाज
चाहे हों जेहादियों के हाथ में
या सुरक्षाबलों के

चौराहे के पार से झाँकते हैं
काफ़ी-हॉउस की खिड़कियों से
बुद्धिजीवियों के उत्तर आधुनिक हुलिए
अखबारवाले खींचते हैं तस्वीरें
हवा में तनाव है
भीतर एक अलाव है
हत्याओं के खिलाफ
टूटता जा रहा है हमारा धैर्य
महात्मा गाँधी मार्ग पर

2001

नदी पर पाँव के निशान

आँख मूँदता हूँ
तो एक लहराती नदी
मेरे सामने खुलती है
अभी-अभी धुले आकाश में
गूँजती है
तुम्हारी खिलखिलाहट
चिड़ियों का एक कारवाँ
उतरता है अलसाए चिनार के
अन्तर्मन में
सहसा पानी की सतह पर
तुम्हारे पाँव के निशान
तैरते हुए
चले आते हैं मेरे अंदर
एक वाद्ययंत्र की तरह बजने लगता हूँ मैं
कुछ सोफियाना
कुछ आदिम राग की बारीकी लिए
तुम्हारी उपस्थिति
बदलती है स्वरलिपि में
मैं तमाम सर्जनात्मक ऊर्जा के साथ
उतरने के लिए फिर एक बार
जीवन के अखाड़े में

खोलता हूँ अपनी आँखें
कहता हूँ तुमसे
कि इस सपने की एक पेंटिंग
बना के मुझे दे दो
तुम कहती हो
यह स्वप्न तुम्हीं ने देखा है
मेरी आँखों से...

2001

●●●

अग्निशेखर

कश्मीर में जन्म : 1955।
पर्वतारोहण, यायावरी और लोकवार्ता में दिलचस्पी।

'पहल', 'वागर्थ', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'हंस', 'साक्षात्कार', 'वर्तमान साहित्य', 'कथादेश' सहित लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में तथा अनेक काव्य-संकलनों में कविताएँ प्रकाशित। कुछ रचनाओं के अनुवाद गुजराती, मराठी, पंजाबी, कश्मीरी तथा अंग्रेजी में। दो कविता-संग्रह *किसी भी समय* (1992) तथा *मुझसे छीन ली गई है मेरी नदी* (1996) प्रकाशित। प्रतिनिधि कश्मीरी कवियों की चुनिंदा रचनाओं के हिंदी में अनुवाद।

विगत तेरह वर्षों से लगातार निर्वासन में। धार्मिक आतंकवाद, विस्थापन, जीनोसाइड और डायस्पोरा के ख़िलाफ़ संघर्ष में सक्रिय भूमिका। वर्षों से जिहादियों की हिटलिस्ट पर।

संपर्क : बी-90/12, भवानीनगर, जानीपुर, जम्मू-180007।
ई-मेल : agnishekhar 1 @ rediff mail.com
Phone : (0191) 530191

सारांश एक परंपरागत व्यावसायिक प्रकाशन का नहीं, इस क्षेत्र में नए मूल्यों — उच्च कोटि के लेखकों व स्तरीय पुस्तकों के चुनाव तथा मुद्रण-प्रस्तुतीकरण की गुणवत्ता के लिए प्रयासरत और मौलिक हिंदी साहित्य, हिंदीतर भारतीय एवं विश्व-साहित्य के अनुवादों तथा समाज-संस्कृति-अर्थ-राजनीति से जुड़े ज्वलंत सवालों पर प्रगतिशील वैचारिक लेखन से प्रतिबद्ध संस्थान का नाम है।

सारांश प्रकाशन

भारतीय एवं विश्व साहित्य का प्रगतिशील मंच